Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

हिन्दी लोक नाट्य की परम्परा

डॉ. बिन्दू परस्ते*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – लोक जीवन में लोक नाट्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोक नाट्यों का जन्म कब हुआ यह तो निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, लेकिन लगता है कि आदिकाल से आदिमानव का मन जब वलों मे रहते – रहते ऊब जाता होगा, तो वह बन्दर और भालूओं को नचाकर अपना मनोरंजन करता आया होगा। चूँकि 'नट' धातु से ही 'नाट्य' शब्द बना है। इससे नाटकों के विकास में 'नृत्य' के महत्वपूर्ण स्थान का पता चलता है।

नाट्य कला अपने विकास के प्रारंभिक काल में आदमी के सामान्य सामाजिक जीवन के साथ जुड़ने के अतिरिक्त उसकी धार्मिक गतिविधियों के साथ भी जुड़ी। कितने ही नाटक विभिन्न मानव समुदायों की विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के आधार पर रचे और प्रदर्शित किए जाते है। रामलीला, इंद्रसभा, कृष्णलीला, राजा हरिशचन्द्र, कितने ही प्राचीन नाटक ऐसे है जो शताब्दियों तक भारत के जनमानस की अभिरूचि तथा उसकी धार्मिक आस्थाओं के साथ जुडे रहे और करोड़ों लोगो के आकर्षण का केन्द्र बन रहे। आज भी गॉव–गॉव और शहर–शहर में अन नाटकों का प्रदर्शन होता है और आज भी असंख्य लोग इनसे भावनात्मक स्तर पर जुडे हुए है। यह कहना अनुचित न होगा कि समय के साथ विककित होती गई नाट्यकला को नियमित मंच तो बहुत बाद में मिला। भारत में तो ये खुले मैदानों अथवा छायादार वृक्षों के नीचे पलती रही। नोटंकी हो या कठपुतली का तमाशा, रामलीला हो या रासलीला बिना मुसजित्त एवं सुव्यवस्थित मंच के ही भारी जनसमूह के बिना इतना प्रदर्शन किया जाता रहा इन्हें हम नाट्य कलाओं के प्रारंभिक रूप भी वह सकते है।

अन्य ललित कलाओं की तुलना में नाटक में अपने दर्शको को प्रभावित करने की क्षमता अधिक है। क्योंकि जब आप कविता पढ़ रहे होते हैं या उसे सुन रहे होते है तो आपके साथ बुद्धि कान या आँखें ही संगत कर रही होती है इसी तरह जब आप नृत्य देख रहे होते हैं तो वृद्धि और आँख ही आपकी सहयोगी होती है। किंतु जब आप एक दर्शन के रूप में किसी नाटक में सम्मिलित होते हैं तो आपकी आँखें कान अथवा यो कहिए कि आपकी समस्त इन्द्रियाँ सक्रिय होकर आनंदित होती है। यही नाट्यकला की श्रेष्ठता और विशेषता है।

रामलीला में रामायण का स्वरूप पूरी तरह रामचरित मानस पर आधारित है। जो कि उत्तर भारत में कथा कहने का एक बहुत ही प्रचलित माध्यम है। दशहरा पर्व के दौरान हर एक गॉव–शहर में भगवान राम के वनवास से लेकर अयोध्या वापस आने पर आधारित नाटक मंचन का आयोजन किया जाता है। रामलीला में प्राय: भगवान राम के बचपन से लेकर वनवास जाने और राम रावण के बीच युद्ध का मंचन होता है। रामलीला का आदि प्रवर्तक कौन है यह विवादस्पद प्रश्न है। भावुक भक्तों की दृष्टि में यह अनादि है। एक किंतदती का संकेत है कि त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र के वनगमलोपरांत अयोध्यावासियों ने चौदह वर्ष की वियोगावधि रामचन्द्र जी भी बाल लीलाओं का अभिनव कर बिताई थी। तभी से इसकी परंपरा का प्रचलन हुआ। एक अन्य जनश्रुति से यह प्रमाणित होता है कि इसके आदि प्रवर्तन मेघा भगत थे जो काशी के कतुआपुर मुहल्ले में स्थित फरहे हनुमन जी के निकट के निवासी माने जाते है। एक बार पुरूषेत्तम रामचंन्द्र जी के इन्हें स्वप्न में दर्शन हो सके। इससे सतपेरणा पाकर इन्होने रामलीला संपन्न कराई। तत्यपरिणाम स्वरूप ठीक भरत मिलाप के मंगल अवसर पर आराध्य देव ने अपनी झलक देकर इनकी मनोकामना पूर्ण की। रामलीला की अभिनव परंपरा के प्रतिष्ठापन गोस्वामी तुलसीदास जी है। इनकी प्रेरणा से अयोध्या और काशी के तुलसीघाट पर प्रथम बार रामलीला हुई।

जिस तरह श्रीकृष्ण भगवान की रासलीला का प्रधान केन्द्र उनकी लीलाभूमि वृंदावन है उसी तरह रामलीला का स्थल है काशी और अयोध्या। रामलीला के पात्र, किशोर, युवा, पौढ़ सभी होते है। सीता या सखियों का अभिनव आज तक किशोर बाकों द्धारा ही संपन्न होता है। पात्रों का चुनाव करते समय रावण की कार्मिक विराष्ता, सीता की प्रकृतिगत कोमलता और वाणीगत मृदुता, शूर्पणखा की शारीरिक लंबाई आदि पर विशेष ध्यान रखा जाता है। अभिनेता चौपाईयों, दोहो, कंठस्य किये रहते है और यथावसर कथोपकनों में उपयोग कर देते है।

रामलीला की सफलता उसकी संचालन करने वाले व्यास सुत्रधार पर निर्भर करती है क्योकि तह संवादों की गत्यात्मकता तथा अभिलेताओं को निर्देश देता है। साथ ही रंगमंचीय व्यवस्था पर भी पूरा ध्यान रखता है। रामलीला के प्रारंभ में एक निश्चित विधि स्वीकृत है। स्थान काल भेद के कारण विधियों में अंतर लक्षित होता है। कहीं भगवान के मुकुटों के पूजन से तो कहीं अन्य विधान से होता है दूसरी ओर समवेत स्वर में मानस का परायण नारद वानी–शैली में होता चलता है। लीला के अंत में आरती होती है।

काशी में शूर्पणखा की नाक काटे जाने के बाद खरधूषण की सेना का जो जुलूस निकलता है उसमें जगमग करते हुए विमान तथा तरह–तरह की लागें निकलती है जिनमें धार्मिक सामाजिक दृश्यों धटनाओं की मनोहम झाँकिया रहती है। साथ में मां काली का वेश धारण किए हुए पुरूषों का तलवार संचालन, पैंतरेबाजी, शस्त्र कौशल आदि देखने लायक होता है।

रामलीला में नृत्य, संगीत की प्रधानता नही होती, क्योकि चरितनायक

गंभीर, वीर, धीर, शालीन एवं मर्यादाप्रिय पुरूषोत्तम है। तत्परिणाम वातावरण में विशेष प्रकार की गंभीरता विराजती रही है। इस लीला की मंडली पहले नहीं होती थी। अब कुछ पेशेवर लोग मंडलियाँ बनाकर लीलाभिनय से आर्थोपार्जन करते है। रामलीला देखने से भारतेंदु हरिशचन्द्र के हृदय से रामलीला गान की उत्कंठा जगी। परिणामत: हिन्दी साहित्य को 'रामलीला' नायक चंपू की रचना मिली।

आयेध्या शोध संरचना द्वारा अयोध्या में तुलसी स्मारक भवन में राम लीला के चार वर्षो में 15 सौ प्रदर्शन हो चुके है।

समूचे देश में लोकनाट्य विधा मानी जाने वाली रामलीला की कई शैलियाँ लगभग समाप्ति पर है। विज्ञान के इस युग में फिल्मों और टेलीविजन की व्यावसायिक स्पर्धा ने इस क्षेत्र मे नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न किया है। सन् 16 सौ में मेघा भगत ने चित्रकूट में जीवंत झांकियों के माध्यम से लीला की शुरूवात की थी। उसके बाद गोस्वामी तुलसीदास मानस आधारित रामलीला काशी में बीच में दर्शकों को रखकर चारों ओर मंच बनाकर शुरू करायी। राधेश्याम रामायण पर भी लीला की शुरूवात यहीं इसी क्षेत्र में हुई पर अब यह दल मुश्किल से मिलते है। अयोध्या मे अनवरत रामलीला के दौरान ही दो वर्ष पहले हुई रिकार्डिग आदि के बाद युनेस्को ने रामलरला को वैदिक मत्रोचार व केरल के कोडियापम के साथ सांस्कृतिक विरासत धोषित किया। अनवरत रामलीला की इस योजना के नायाब होती इस लोकविद्या के कलाकारों में नयी उर्जा डालने का काम किया है। अंकिया नाट, यक्षगाान, कलकतिया व राजस्थानी कठपुतली रामलीला दलों के साथ ही योजना में देश और प्रदेश के करीब 35 लीला दल यहाँ प्रदर्शन कर चुके है। कलाकारों को इस योजना से अप्रत्यक्ष रोजगार मिला है।

रामनगर की विश्वप्रशिद्ध रामलीला पर जानप्रवाह वाराणसी पिछले करीब 20 वर्षो से शोध व संकलन कर रही है।

भारतीय संस्कृति में रामकथा का अद्भुत प्रभाव देखने को मिलता है। उपनिषदों, पुराणो और स्मृति ग्रंथों से लकर नृत्य गायन और कथावाचन तक के विभिन्न कालसपों में यह हमारे लोकजीवन में पूरी तरह संजीवनी है। विविधताओं से भरे इस देश में यह हर क्षेत्र की स्थानीय परंवराओं का लीस्सा है।

पिछले दिनों इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स ने देश के विभिन्न लीस्सों से ऐसे संगठनों और सामुदायिक प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया, जो अलग-अलग शैलियों में रामकथा का वाचन, मंचन या प्रदर्शन करते है। छह महीने तक चले इस प्रोजेक्ट में उन लोगों ने अपनी - अपनी शैलियों का प्रदर्शन किया और उनकी विशेषताए बताई।

इस पहल का मुख्य उद्देश्य यह था कि रामकथा की समृद्धलोक परंपरा को संजाया जाए। लेकिन इस दौरान रामकथा से जुडे जितने प्रसंग देखन को मिले थे, वे भारतीय जीवन में राम के चरित्र के व्यापक प्रभाव को उजागर करते है। जैसे असम की राम विजय की नाट्य परंपरा। इसे संत कवि शंकरदेव ने रचा था।

यह झंकिया नट और भावन शैली में मंचित की जाती है। यही रामकथा पर आधारित 'कुशन गान' नायक एक परंपरागत लोक नाट्य भी है। जिसमें भगवान राम सीता माता के बेटे कुश पर रखा गया है। उत्तर पूर्व के ही मणिपुर में इसे जात्रा शैली में मंचित करने की परंपरा है।

रामकथा की इन सभी शैलियों में उस क्षेत्र विशेष के परिवेश को खूबसूरती से उतारा गया है। वहाँ की तो प्रकृति, खान-पान पहनावा और सामाजिक संस्था इन कथाओं में धड़कती है। राम भगवान नायक है ही दूसरे पात्र भी महत्वपूर्ण हो जाते है। मध्यभारत का एक समुदाय है बैगा। उसकी रामकथा में लक्ष्मण को अग्निपरीक्षा देनी होती है जिसे लक्ष्मण जाती कहा जाता है। सीता जी कई कथाओं में काली का रूप धारण करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. लोक साहित्य - डॉ. राजेश श्रीवस्तव 'गब्बर'
2. लोक गाथा - श्री बाबूराम मरकाम
3. लोक नाट्य - श्रीमती गीता मरकाम
4. लोक कथाएँ - श्री प्रेमचंद परस्ते
5. छत्तीसगढ़ी और उसका साहित्य - डॉ. श्रीमती बिन्दू परस्ते

****